सहारनपुर की बहनें लड़ रही हैं शराब के खिलाफ

मणिमाला

कितना काम रहता है गांव की गरीब औरतों के पास। घर देखो। बच्चे देखो। खाना पकाओ। घर साफ करो। कपड़े साफ करो। खेत पर जाओ। बीज बोओ। घास निकालो। खाद डालो। पौधे बड़े न हो जाएं तब तक उनकी सेवा करो। पक जाएं तो काटने जाओ। यह बात छिपी नहीं है कि गांव में औरतें ज़्यादा काम करती हैं। घर में भी और बाहर भी। इतना काम किसी भी व्यक्ति को थका देने के लिए काफ़ी है। पर वे अच्छी तरह जानती हैं कि उनके कंधे पर ही गांव चलता है।

ऐसे में अगर कोई तीसरा मोर्चा संभालना पड़ जाए तो? हमारे लिए यह सवाल पहाड़ सा सवाल हो सकता है। लेकिन उनके लिए? कुछ भी नहीं। हंसते गाते तीसरे मोर्चे पर भी शुरू। यही कहानी है सहारनपुर के पठेड़ गांव की औरतों की।

ठेका शराब का

उनके गांव पठेड़ में 30 मार्च 1990 को शराब का ठेका खुला था। यह गांव सहारनपुर स्टेशन से 12 किलोमीटर दूर है। रेलवे स्टेशन से बस सीधी जाती है। बस पड़ाव पर ही यह ठेका खुला।

जब ठेका खुला तब औरतों ने बहुत विरोध किया था। उन्हें पता था कि इस गांव के ज़्यादातर लोग गरीब हैं। मज़दूरी करते हैं। रोज कमाते हैं। रोज खाते हैं। रोज़ कमाई से थोड़ा बहुत बचाते हैं। उसी से बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल भेजते हैं। गांव के करीब दो सौ परिवारों में से आधे परिवारों के बच्चे ही स्कूल जा पाते होंगे। औरतों को डर था कि शराब का ठेका खुला तो रोटी के पैसे शराब पर खर्च होंगे। बच्चों को स्कूल भेजना मुश्किल हो जाएगा। शराब पीकर जब लोग अपने होश गवां बैठेंगे तो औरतों को छेड़ेंगे।

शराब के ठेके के बगल में आम का बाग है। बड़ा सा। औरतें शौच के लिए आती हैं वहां। उन्हें डर था कि अब जवान लड़कियां बेहिचक नहीं निकल पाएंगी। घर-घर में पैसे को लेकर झगड़े होंगे। औरतों की पिटाई होगी। बसा-बसाया घर उजड़ेगा। शांति की जगह लड़ाई ही लड़ाई होगी।

पहला विरोध

इसीलिए ठेका खुलने की खबर मिलते ही वे समूह में सहारनपुर जिलाधिकारी के पास गईं। उन्होंने मिन्नतें की कि इस गांव को बर्बादी की राह न ले जाएं। जिलाधिकारी ने यह कह कर उन्हें वापस भेज दिया कि इस साल तो नीलामी हो चुकी है। अगले साल उसकी नीलामी नहीं होगी। मन मार कर वे लौट आईं। लेकिन यह फैसला कर लिया कि अगले साल फिर जाएंगी जिलाधिकारी के पास।

वे गईं। जवाब वही पुराना। इस साल तो नीलामी हो चुकी है। अगले साल नहीं होगी। बस अगले साल...अगले साल...करते-करते तीन साल गुजर गए।

बढ़ती समस्याएं

इधर गांव का बुरा हाल। ठेका खुलते समय जिस बात का डर था, वही सब हुआ। जो कभी नहीं पीते थे, वे भी पीने लगे। एक बोतल से शुरू किया। छह तक पहुंच गए। औरतों को पैसे के लिए उनके पति मारने पीटने लगे। पैसे न रहने पर घर के बर्तन बेच आते। उससे पीते।

उन्हें देख कर बच्चों ने भी पीना शुरू कर दिया। पहले बोतल में बची रह गई एक-दो बूंद से स्वाद चखा। फिर बोतल की ललक होने लगी। पैसे कहां से आते? पहले अपने घर के सामान बेचे। फिर दूसरों के घर पर हाथ मारने लगे। नतीजा? जिस गांव में कभी किसी बच्चे ने चोरी नहीं की थी, उस गांव के बच्चे चोरी के आरोप में जेल गए। गांव का दोस्ताना माहौल बिगड़ा। जिनके बच्चे जेल गए उन्हें लगा कि उनके बच्चों को फंसा दिया गया है। जिस गांव में कभी झगड़े-फसाद नहीं हुए थे, उस गांव में भी होने लगे। एक-दो बार तो शराब की वजह से मजहबी दंगा होते-होते रुका।

इस गांव में दोनों मज़हब के लोग रहते हैं। मिलजुल कर रहते हैं। आपस में लड़ते नहीं हैं। 1990 और 1992 में कई बार बाहर के लोग उन्हें भड़काने आए थे। लेकिन वे नहीं बहके। सड़क के एक तरफ मस्जिद है। दूसरी तरफ मन्दिर है। मस्जिद के अजान और मन्दिर की आरती के बीच कभी कोई टकराहट नहीं हुई। उसी गांव में जून माह में छह तारीख को शराब पीने के सवाल पर

तनाव बन गया था। गांव के लोग समझदार हैं। कुछ होने नहीं दिया।

बहनें जुड़ीं

लेकिन ऐसे कब तक? रामरत्ती नाम की एक सखी आगे आई। वह महिला सामाख्या कार्यक्रम की सखी है। पहले अनपढ़ थी। इसी कार्यक्रम

के दौरान उसने पढ़ना सीखा है। उसका घर भी शराब से बर्बाद हो रहा था। वह संतरा से मिली। उसकी भी वहीं कहानी। दोनों रामो से मिलीं। रामो जाहन्वी से मिली। जाहन्वी 'दिशा' नाम की सामाजिक संस्था में काम करती है। यह संस्था 1982 से ही यहां काम कर रही है। इसी संस्था के हस्तक्षेप से गांववालों ने मजदूरी का सवाल हल कर लिया था। पहले औरतों को मर्दों से कम मज़दूरी मिलती थी। अब दोनों को बराबर मिलती है। मज़दूरी बढ़ भी गई है। 20 रुपए रोज़ की हो गई है।

इन सबने मिलकर महिला जागृति समिति बनाई। तय किया कि इस बार प्रशासन के आश्वासन पर विश्वास नहीं करेंगी। 24 मार्च को सहारनपुर में ठेके की नीलामी होने वाली थी। करीब दो सौ औरतें वहां चली गईं। उन्होंने उस दिन नीलामी नहीं होने दी। लेकिन एक दिन चुपके से 30 अप्रैल को नीलामी कर दी गई। गरीब दास ने ही इस बार भी ठेका खरीदा। उसी ने मेरठ, मुजफ्फरनगर और सहारनपुर जिले का ठेका लिया है। 17 करोड़ रुपए की बोली लगाई थी उसने।

गांव में धरना

अब औरतों ने तय किया कि गांव में ही इसके खिलाफ मोर्चा खोलेंगी। 30 मार्च को करीब पांच सौ औरतें शराब की दुकान के सामने धरना देकर बैठ गईं। दुकानदार से मिन्नतें कीं कि वह दुकान बंद कर दे। दुकानदार भी नहीं चाहता कि गांव में शराब बिके। उसने तो किराए के लिए अपनी दुकान दे रखी है। वह दुकान बंद कर चला गया। दुकान के बाहर औरतों ने पोस्टर चिपकाए। नारे लिखे। चप्पल और जूतों की माला लटकाई। और धरना देकर बैठ गईं।

इस बीच उन्हें फसल काटने जाना पड़ा। बारी-बारी से उन्होंने फसल काटी। बारी-बारी से जाकर घर सम्भाला। रात में वहीं सोईं धरने पर। उनके साथ उनके दूधमुंहे बच्चे भी थे। मार्च की सर्दी। मई की गर्मी और जून की बारिश। मौसम ने तीन बार रंग बदला। तीन बच्चे मर गए वहीं। लू लहर से। सड़ककातला से आने वाली एक सखी मति का तीन माह का गर्भ का बच्चा रास्ते में दम तोड़ गया। वह फिर भी एक दो-दिन आराम करके धरने में आती रही।

प्रशासन की बेरुखी

प्रशासन के लोग फिर भी नहीं आए। सरकार को लगता है कि एक दिन थक कर वे उठ जाएंगी। लेकिन महिलाओं ने तय कर रखा है कि वे ठेका बंद करवा कर ही दम लेंगी। 26 जून को पूरे पठेड़ गांव की औरतें फिर गईं सहारनपुर जिलाधिकारी के पास। उस दिन देश भर में सरकार नशा विरोधी दिवस मना रही थी। लेकिन उन पर लाठियां बरसाई गईं। आठ औरतों को खूब चोटें आईं। एक हफ्ते तक वे अस्पताल में पड़ी रहीं। उनकी हड्डियां टूटी, लेकिन हौसला फिर भी नहीं टूटा। अब तो मर्द भी इस लड़ाई में शामिल हो गए। पीने की कसमें खाने लगे हैं। धरने पर बैठने लगे हैं। □